विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NS (M)–16/86

वर्ष १५ • बम्बई • बुद्धवर्ष २९२५ • पौष-माघ पूर्णिमा [शक] • दि. २४-२-१९८६ • अंक ८/९

पन्द्रह वर्ष बीते

१९ जनवरी १९७१ के दिन असीम कृतज्ञता के पात्र पूज्य गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन की शरीर-च्युति हुई थी. उनकी सदा ही एक महती धर्मकामना रही कि वे भगवान बुद्ध और उनकी कर्म-भूमि भारत देश के ऋण से मुक्त हों. यहीं से सदियों पूर्व विपश्यना का अनमोल रत्न बर्मा गया था. जो धर्मगंगा भारत से बर्मा गयी वह पुनः भारत लौटे और कोटि कोटि प्यासे लोगों की प्यास बुझाये. जो कल्पवृक्ष भारत से बर्मा गया था वह पुनः भारत के उपजाऊ आंगन में उगे, फले-फूले और अनेक संतप्त लोगों को शीतल छाया और मुमुक्षुओं को अमर फल प्रदान करे. भारत का यह बेहतरीन नगीना भारत में ही नहीं, भारत के द्वारा बाहर विदेशों में भी बँटे.

उनकी इस मंगलकामना की पूर्ति का नन्हा सा कदम उनके जीते जी ही उठाया जा चुका था. पिछले १५ वर्षों में भले धीमी गति से पर संतोषजनक ढंग से आगे बढ़ा. इस सोलहवें वर्ष से इसकी गति में तीव्रता आनी ही चाहिए। अब तक भारत तथा विदेशों में स्थापित विपश्यना केन्द्रों में तथा अन्य अनेक स्थानों पर लगभग ४५ सहायक आचार्य धर्मचारिका करते हुए बहुजन हिताय बहुजन सुखाय धर्मसेवा करते रहे हैं. अब समय आया है कि सहायक आचार्यों, शिविरों और साधकों की संख्या बढ़े. यही नहीं साधकों की सेवा भी गहन हो ताकि जो योग्य हैं वह विपश्यना साधना की अधिक गहराइयों का लाभ उठा सकें.

मुझे अपने अनुभव याद आते हैं. बर्मा रहते हुए नित्य नियमित समय पर तो साधना हो जाती थी परन्तु बाकी सारा समय व्यावसायिक गृही जीवन की जिम्मेदारियों को निभाने में ही बीतता था. यों कई वर्ष बीते. फिर यकायक महा मांगलिक मोड़ आया. १९६४ से १९६९ तक पांच वर्ष का समय जीवन में एक स्वर्णिम अवसर लेकर आया. सरकारने सारे व्यापार-उद्योगों का राष्ट्रीयकरण अथवा सामाजीकरण कर लिया. या यूं कहूँ कि मेरा कल्याणीकरण कर दिया. कितना बड़ा बोझ सहज ही उतर गया सिर पर से. बहुत चाहा करता था कि विपश्यना संबंधी साहित्य पढ़ूं, समझूं और उसे साधना म उतारने की प्रेरणा प्राप्त करूं. पर

धम्म वाणी

साधु सुविहितानं दस्सनं। कङ्खा छिज्जति बुद्धि वड्ढति॥
बालाम्पि करोन्ति पण्डितं। तस्मा साधु सतं समागमो॥

थेरगाथा – ७५

सत्पुरुषों का दर्शन मंगलकारी है। इससे शंकाएँ दूर होती हैं, बुद्धि बढ़ती है। वे मूर्ख को भी ज्ञानी बना देते हैं। अतः सत्पुरुषों की संगति करें।

भाग-दौड़ के जीवन में अवकाश ही कहां था? अब तो अवकाश ही अवकाश. और फिर पूज्य गुरुदेव की संत-संगति. साधना को जैसे पंख लग गये. इतनी ऊँची उड़ाने लगने लगीं. भगवान की मूल बाणी पढ़ता तो पुलक रोमांच से तन मन भर भर उठता. यूं लगता कि यह बात तो भगवान ने मुझे समझाने के लिए ही कही है. कभी कभी लगता एक एक शब्द का संबोधन मेरे लिये ही किया जा रहा है. जिस सूत्र को घर से पढ़कर आश्रम जाता और वहां पूज्य गुरुदेव उसके किसी शब्द, वाक्य अथवा अंश को लेकर व्याख्या करने लगते तो सचमुच अमृत की वर्षा ही होती. मानस सराबोर हो उठता पावन धर्म-सरोवर में. करुणामूर्ति पूज्य गुरुदेव सदा धर्म-चर्चा के लिये तत्पर. कभी कभी तो रुग्ण अवस्थामें बिस्तर पर लेटे लेटे ही जब अपने धर्मपुत्र को आया देखते तो करुणा से भर उठते और उनके लिये विश्राम अत्यंत आवश्यक होते हुए भी वे धर्म-विभोर होकर बोलने लगते. किसी धर्म-प्रसंग की बारीकियां समझाने लगते. धुनिया जैसे धुन धुन कर कपास की गांठे खोल दे, यूं एक एक तार अलग करके समझाते. लोक-प्रचलित अर्थ तो शब्दकोश के अर्थ होते हैं. व्याकरण-सम्मत अर्थ होते हैं. परन्तु यह तो विपश्यना के योगिराज थे. अनुभूतिजन्य विपश्यना की प्रतिभा के आधार पर धर्म का गहन-गंभीर अर्थ समझाते. रेशा रेशा अलग. कहीं कोई गुत्थि नहीं. सुनकर भाव-विभोर हो उठता. ऐसी अवस्था में जब विपश्यना करने बैठता तो मानस सहज ही अनुभूतियों की सूक्ष्मता में उतरने लगता. भ्रम-भ्रांतियों की परतें दूर होती जातीं. कार्य-कारण पर आधारित कुदरत का सार्वजनीन धर्म कितना प्रांजल! कितना स्पष्ट! मुक्ति

का हल्कापन महसूस करते हुए साधना से उठता. धन्यता अनुभूति पर उतरती. भगवान के औरस धर्मपुत्रों से लेकर सयाजी ऊ बा खिन तक की समस्त आचार्य परम्परा के प्रति मानस भाव-विभोर होता ही, क्योंकि उन्होंने इस साधना-पद्धति को अपने शुद्ध, निष्कलंक रूप में कायम रखा. कहीं सम्मिश्रण नहीं होने दिया. साथ ही साथ उस परम्परा के प्रति भी मन कृतज्ञता-विभोर हो उठता, जिसने कि भगवान की वाणी को अपने परम परिशुद्ध रूपमें पाले रखा, जिसका पठन-मनन करते हुए विपश्यना के अभ्यास में कितना बड़ा बल मिलने लगा था. परियत्ति और पटिपत्ति याने सिद्धांत और साधना का संयोग मानो मणि-कंचन-संयोग. कितना लाभान्वित हुआ था इससे.

सोचता हूँ आज के भारतीय विपश्यी साधक इस सौभाग्य से किस प्रकार वंचित हैं! इनमें से अनेक ऐसे हैं जो चाहते हैं कि भगवान की मूल वाणी पढ़ें. पर उपलब्ध कहां? देवनागरी में त्रिपिटक की एक प्रति भी मार्केट में उपलब्ध नहीं और फिर हिंदी अनुवाद? इस विशाल पालि साहित्य की किसी इक्की-दुक्की छोटी-मोटी पुस्तक का कोई अनुवाद भले मिल जाय. अन्यथा शून्य ही शून्य! बेचारे साधक को मन मसोसकर रह जाना पड़ता है.

जब ऐसा कोई साधक सतिपट्ठान के शिविर में सम्मिलित होकर भगवान की इस वाणी की थोड़ी बहुत भी व्याख्या सुनता है और साथ साथ साधना करता है तो भावविभोर हो उठता है. विधि कितनी स्पष्ट हो उठती है. चाहता है इसी प्रकार कुछ और भी पढ़ने-सुनने को मिले. पालि त्रिपिटक और फिर उसकी अर्थ-कथाएँ याने भाष्य, टीकाएँ तथा अनुटीकाएँ और इन सब के अनुभवी साधकों द्वारा किए गये हिंदी-अनुवाद जिस दिन विपश्यी साधकों को पढ़ने मिलेंगे उस दिन वे सचमुच निहाल हो उठेंगे. यह नहीं कि सभी साधक इस दिशा में रुचि रखकर और समय निकालकर इनका अध्ययन कर सकेंगे. पर एक बड़ी मात्रा में ऐसे पके हुए साधक हैं ही जो कि पानी में मछली की तरह तैरने लगेंगे. उन्हें उपयुक्त अवसर और सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए.

पालि के अतिरिक्त संस्कृत के विशाल साहित्य में भी विपश्यना पद्धति पर कितना कुछ भरा पड़ा है और फिर यूं ही प्राकृत वाङ्मय में भी है ही. योग्य विपश्यी साधक अनुसंधान करें तो सब प्रकाश में आये और बहुत बड़ा लोक-कल्याण हो.

बहुत बड़ा काम है. अब समय आ गया है. आरंभ तो होना ही चाहिए. बस सतर्क इसी बात के लिए रहना होगा कि विपश्यना के ध्यान केन्द्र कहीं पठन-पाठन के केन्द्र न बन जांय और अपना मूल मकसद न भूल बैठें. साधक भी कहीं वाणी के रस में इतना न डूब जांय कि प्रत्यक्ष अनुभूतिजन्य साधना करनी बंद कर दें. इसे ध्यान में रखते हुए जहां जहां संभव हो, विपश्यना केन्द्रों से सटे हुए स्थानों पर यह कार्य आरंभ किया जाय. पहल तो इगतपुरी से हो. धम्मगिरि के चरणों पर नीचे की समतल भूमि पर पालि ग्रंथों के अध्ययन, अनुशीलन और अनुसंधान का काम आरंभ हो. इसमें ऐसे अध्यापक और विद्यार्थी भाग लें जो कि सभी धम्मगिरि पर नियमित साधना करनेवाले हों. साधना पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग बने और अध्ययन साधना का सहायक संबल.

गुरुदेव की पावन स्मृति का यह सोलहवाँ वर्ष इस मंगल कार्य का शुभारंभ देखे और अनेकानेक साधकों को विपश्यना की गहराइयों से परिचित करवा कर उनके कल्याण का कारण बने.

कल्याण मित्र,
(स. ना. गो.)

साधकोंके उद्गार

विपश्यना-शिविर : एक यादगार यात्रा

लाभुबेन मेहता

विपश्यना शिविरसे जब लौटी तो लोगोंने प्रश्न करना शुरू किया कि वहाँ जानने योग्य क्या मिला? क्या लेकर लौटी? तो मैंने कहा बहुत सारा मिला. मंगल मैत्री की भावना मिली. यह भावना ही किसी के लिए जीवन-पाथेय हो सकती है. मंगल मैत्री-का संबल हमारी इस संसार-यात्रा में ऐसा सबल सहयोगी है जिसका वर्णन नहीं हो सकता. यह तो स्वयं के अनुभव से ही जाना जा सकता है. शब्दों में व्यक्त करना असंभव को संभव बनाने का प्रयास होगा.

विपश्यना शिविर में जाने का विचार कई बार किया. दो बार पत्र लिखने पर स्वीकृति भी मिली, पर जा न सकी. शिविर में जाने की तीव्र इच्छा थी इसलिए पुनः फार्म भर कर भेज दिया. इस बीच मेरी बड़ी बहन पूर्णिमा पकवासा और छोटी बहन के समान मृणालिनी देसाई वहाँ शिविर में तीन दिन रहकर अभी आई थी. मेरे शिविर में जाने के विचार को उनसे और भी बल मिला.

इसके अतिरिक्त शिविर में जाने के लिए मैंने जिस किसी से भी चर्चा की उससे संतोषजनक उत्तर मिला. सब ने यही कहा, "अवश्य जाइए. वहाँ का वातावरण बहुत अच्छा है. तन-मन को लाभ ही होगा." किसी ने भोजन की प्रशंसा की तो किसी ने शांतिलाभ की बात बताते हुए कहा, "जिन्दगी की थकान उतर जाती है वहाँ." इन सब से मन में जिज्ञासा बढ़ी. इसी बीच मेरे सिर में भयानक दर्द उठा. इस प्रकार के झटके पहले भी कई बार आए हैं जिसका कारण मेरे दिमाग में कुछ खून के थक्के जमे हुए बताते हैं. होमियोपैथिक इलाज चल रहा है. पर विचार आया कि क्यों न शिविर में ही जाकर लाभ लिया जाय? परन्तु सिर-दर्द जाते ही यह बात फिर भूली पड़ गई.

लेकिन आखिरकार आवेदित शिविरकी तारीख २४ को इगतपुरी चली ही गई. मेरे साथ गाड़ी में और भी कई लोग शिविर में जा रहे थे. उनमें से किसी भाई ने मुझे अपने साथ धम्मगिरि तक ले जाने का आश्वासन दिया. इगतपुरी रेल्वे स्टेशन "धम्मगिरि" की तराई पर ही है. स्टेशन के बाहर आते ही सड़क पर से धम्मगिरि का दर्शन होता है. हम जिस गाड़ी से

उतरे, संयोगवश उसी से गुरुदेव और उनकी धर्मपत्नी भी उतरे. वे हमारे आगे आगे चल रहे थे. हम लोग भी उन्हीं के साथ हो लिए और ५–७ मिनट में धम्मगिरि के पास आ पहुँचे. धम्मगिरि का दूर का दर्शन सचमुच मनोहारी लगा. वहाँ बड़ी चहल-पहल दिखाई दी. कहीं कहीं मकान की छतें दिखाई दे रही थी. परन्तु ऊँचाई को देखते हुए वृद्ध शरीर के कारण पैदल चलकर वहाँ पहुँचने की मेरी हिम्मत नहीं हुई. चढ़ाई चढ़नी होगी इसकी पहले कल्पना भी नहीं थी. यहीं से कल्पना करने लगी ... वहाँ ऊपर तो चढ़ाव-उतार की ढालू जमीन होगी. कहीं कहीं कुदरती गुफाएँ होंगी, जिनमें लोग ध्यान करते होंगे. परन्तु नहीं जानती थी कि ऊपर साफ-सुथरे सीधे मार्ग भी होंगे. डनलप-गद्दे और शौच-पानी के साथ कितने ही पलंगदार कमरे होंगे. सोलर-पद्धति से गर्म पानी भी पहुँचता होगा. वैसे आश्रम का मतलब तो यही समझती थी कि वहाँ सब प्रकार की असुविधाएँ ही होंगी. इसके बावजूद विपश्यना के प्रति मेरी जिज्ञासा ही थी जो मुझे यहाँ तक खींच लाई थी. परन्तु अब इस चढ़ाई को देखते हुए तो मेरी हिम्मत ही पस्त हो गई. चारों ओर निगाह दौड़ाकर देखने लगी कि कोई मोटरगाड़ी दिखाई दे तो पहुँचू. फिर किसी साइकिल वाले से ही प्रार्थना करने लगी कि मुझे धम्मगिरि पर पहुँचा दे. मेरे साथ वाले भाई को मेरी चिंता का भान हो गया. इतने में ही गुरुजी को लेने के लिए कोई कार आ पहुँची. गुरुजी और उनकी पत्नी उसमें बैठ गए. साथ वाले भाई ने मुझे भी उकसाया. पर बिना इजाजत मैं कैसे बैठूं ? इतने में गुरुजी ने स्वयं ही कहा कि २-३ वृद्ध लोगों को गाड़ी मै बैठा लो. माताजी ने तुरंत कहा, आइए सब लोग साथ चलेंगे.

५ मिनट में गाड़ी से आश्रम के अहाते में प्रविष्ट हुए. एक कल्पनातीत दृश्य सामने था. यहाँ तो सैकड़ो व्यक्ति आसानी से घूम-फिर सकते थे. बिल्कुल सपाट जमीन. जगह-जगह हरियाली, बगीचे और सुंदर लताएँ. लोगोंको बैठने के लिए चबूतरे और वृक्षों के पास सूचना-पट्ट लगे थे. आश्रम में प्रवेश करते ही कार्यालय. यहाँ बाहर बरामदे में दो व्यक्ति लोगों का स्वागत करते हैं और प्रवेश संबंधी प्राथमिक औपचारिकताएँ पूरी करते हैं.

अंदर पेड़ के नीचे तथा पंडाल में बड़ी ही सुव्यवस्थित व्यवस्था है जहाँ कई प्रकार के फार्म और रजिस्टर भरने होते हैं. कीमती सामान जमा कराके उसका टोकन मिलता है. फार्म जमा किए जाने पर रहने के लिए कमरा मिलता है. उसके बाद सब को दस दिन के लिए आश्रम के अंदर ही रहना होता है. पढ़ना-लिखना एवं बाहरी संपर्क बिल्कुल बंद. महिलाओं और पुरुषों का निवास अलग. रास्ते भी अलग. इसलिए एक-दूसरे से संपर्क नहीं होता. इस नियम का बड़ी कड़ाई से पालन होता है. बहनों का निवास मध्य भाग में है जहाँ से साधना-कक्ष एवं भोजन-कक्ष तक जाने में सुविधा है. पुरुषों का निवास बिखरा हुआ है. आश्रम बहुत दूर तक विस्तृत है जिसका भान शीघ्र ही नहीं हो पाता. भोजनकक्ष की ओर जाते हुए नीचे तराई दीखती है और बहुत दूर तक पहाड़ दिखाई देते हैं. लोग नीचे पत्थरों पर बैठकर पहाड़ों पर से गुजरते हुए बादलों व फैली हुई हरियाली का आनंद लेते हैं. सब मिलाकर देखें तो यह स्थान एक पिकनिक-स्थल जैसा लगता है. कमरे की खिड़की के बाहर मूसलधार वर्षा को देखना भी जिंदगी का एक अनमोल अनुभव होता है. परन्तु यहाँ तो लोग साधना की कठिन तपस्या के लिए आते हैं, किसी क्षणिक आनंद के लिए नहीं. अतः यह प्राकृतिक आनंद उनके लिए बेमाने हैं. शिविरार्थियों का कार्यक्रम बहुत ही कठिन होता है. बिल्कुल घड़ी के कांटे पर चलना होता है. यहाँ आने के पहले प्रत्येक को नियमावली समझकर ही आना होता है. शहरी लोगों को कठिन अवश्य मालूम होता है. साधना की दिनचर्या प्रातः ४ बजे से आरंभ होकर रात्रि ९:३० बजे तक चलती है. इसमें प्रातः ६:३० से ८:३० बजे तक नाश्ता व विश्राम, दोपहर ११ से १ बजे तक भोजन एवं विश्राम, सायं ५ से ६ बजे तक चायपान और विश्राम के अतिरिक्त दिनभर ध्यान की प्रक्रिया में ही लगना होता है.

महिलाओं के निवास से ३ मिनट के अंतर पर ही ध्यान–कक्ष है जो कि आश्रम का प्राण है. यहीं पर साधकों को अन्तर्मुखी होने का पाठ पढ़ाया जाता है. जैसे चारों ओर से नदियाँ आकर सागर में समा जाती हैं वैसे ही चारों ओर से साधक आकर यहाँ एकत्र होते हैं. ध्यान-कक्ष में बहुत से आसन बिछे रहते हैं जिन पर नीले रंग की खोल चढ़ी है. चारों ओर परदे भी नीले रंग के हैं, पूछने पर बताया गया कि यह रंग आंख के लिए शांतिदायक है और मन के लिए शीतल है. आसनों पर लोग समूह में बैठते हैं. सामने मंच पर दो चौकियाँ हैं जिन पर पू. गुरुजी और माताजी विराजमान होकर यहीं से ध्यान-संबंधी निर्देश तथा मगल-मैत्री देते हैं और साधना की कठिनाइयों का उत्तर देते हुए शका-समाधान करते हैं.

हॉल से सटा हुआ ध्यान-मंदिर है जिसे चैत्य या पगोड़ा; जो भी नाम दें. यह गोलाकार बर्मा के चैत्य की प्रतिकृति है, ब्रह्मदेश में पू. गुरुजी के गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन ने ऐसा चैत्य बनवाया है. पूछने पर मालूम हुआ किसी विदेशी ने इसका नक्शा बनाया था और स्थानीय इंजीनियरों के सहयोग से यह निर्मित हुआ. इसके बीच में आचार्य-कक्ष है जिसमें केवल आचार्य बैठते हैं और ध्यान करते एव मार्गदर्शन देते हैं. इसके चारों ओर आठ कमरे हैं. पहली मजिल पर बने इस केन्द्रीय कक्ष एव आठ कमरों के ऊपर सुनहरे रंग के शिखर हैं जिन पर छत्र लगे हैं. इन छत्रों में छोटी-छोटी घंटियाँ लगी हैं जिनकी मंद-मंद ध्वनि वातावरण में मनोरमता भरती है. इस मंदिर के चारों ओर लगभग दो सौ शून्यागार (गुफाएँ) हैं. इनकी साइज लगभग ३×७ फिट होगी, जिनमें बैठकर साधकों को अकेले में ध्यान करने की सुविधा होती है. इन कोठरियों में सीधे प्रकाश व हवा नहीं आती बल्कि ऊपर की ओर तथा दरवाजे पर नीचे जाली लगी है जिससे हवा अदर आती है. भीतर बिजली के बटन, बैठे हुए हाथ की पहुंच के अंदर है.

यहां निर्माण का काम बहुत तेजी से चल रहा है जिसमें साधकों के लिए आधुनिक सुविधापूर्ण निवास प्रमुख हैं. आश्रम का विस्तार होते जा रहा है. दस दिवसीय शिविर नियमित रूपसे चलते रहते हैं. शिविरों में बहुत जगहों से लगभग सभी वर्ग के लोग आते हैं क्योंकि यहां गरीब-अमीर, ऊँच-नीच या अनपढ़–

विद्वान का कोई भेदभाव नहीं है. जिसके मन में धार्मिक भावना हो वही आ सकता है. इसलिए अनपढ़, गरीब से लेकर शहरी धनपति, बुद्धिशाली, पदाधिकारी, प्रोफेशनल अथवा कलाकार सब के लिए यह आश्रम है. यहां शिविर में सैकड़ों लोग आते हैं तो भी कार्यकर्ताओं की सेवा में किसी प्रकार कि कमी नहीं आती, उनके बर्ताव में कोई भेदभाव नहीं होता.

पहाड़ी क्षेत्र है. पानी की तंगी है. फिर भी निश्चित स्थानों पर नल लगे हैं. पीने का पानी अलग से है जो कि वेतनभोगी महिलाएँ जगह-जगह मटकों में भरती रहती हैं. बर्तनों की सफाई भी वेतनभोगी औरतें करती हैं. नहानघरों आदि में पानी सतत् मिलता है. गांव का क्षेत्र होने के कारण बिजली सतत् नहीं रहती इसलिए साधकों को अपने साथ टार्च रखनी चाहिए. आश्रम की ओर से मोमबत्ती आदि की सुविधा रहती है पर किसी से कोई चार्ज नहीं लिया जाता. सारा खर्च दान से चलता है. दान भी केवल विपश्यी साधकों से ही लिया जाता है. वह भी यथासामर्थ्य जिसकी जो इच्छा हो ! किसी से कोई मांग नहीं की जाती.

थोड़े में कहें. - "यहां सब कुछ है". फिर प्रश्न उठता है कि क्या नहीं है ? तुरन्त मन ही जवाब देता है कि यहां नौकर नहीं ह. शहर के आराम तलब लोगों को नौकर की सुविधा नहीं मिलती. हां अशक्त साधकों को वहां के साधक-सेवक मदद करते हैं इसलिए किसी को नौकर की कमी महसूस नहीं होती. ऐसी छोटी मोटी तकलीफों के बावजूद भी कोई पूछे कि यहां हमें क्या और क्यों अच्छा लगा ? तो मै कहूंगी कि गुरुजी की सादगी और ध्यान सिखाने की पद्धति बरबस आकर्षित करती है.

(गुजराती दैनिक "जन्मभूमि" -में प्रकाशित लेख का संक्षिप्त हिन्दी–अनुवाद–साभार.)

– क्रमशः

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली–११० ००७.
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

मोथो थोथो ही रह्यो, पोथो पढ अभिमान ।
बिना ध्यान ना मिल सक्यो, सांच धरम रो ग्यान ॥१॥
गांठ गंठीलो ही बण्यो, पढ पोथ्यां रो ग्यान ।
आखर आखर सुलझग्यो, सत्गुरु मिल्यो सुजान ॥२॥
मन बिस ही बिस सूं भर्यो, काळा नाग भुजंग ।
इमरत पी निरबिस हुयो, सद्गुरु रै सत्संग ॥३॥
काम क्रोध की बाढ मँह, डूब रयो मझधार ।
दियो सहारो हाथ को, गुरुवर लियो उबार ॥४॥
गुरुवर रै परताप सूं, खुलग्या कपट कपाट ।
मिली धरम की साधना, निरमल हुयो निराट ॥५॥
हाथ न सूझै हाथ नै, घुट्यो घोर अँधियार ।
दिवळो चसग्यो धरम को, गुरुवर रो उपकार ॥६॥

दोहे धर्म के

बिना ज्ञान ना ध्यान है, बिना ध्यान ना ज्ञान ।
ज्ञान ध्यान दोनों मिलें, तो होवे कल्याण ॥१॥
बियाबान बन भटकते, रहा हृदय अकुलाय ।
गूंजी वाणी धरम की, सत्पथ दिया दिखाय ॥२॥
मंगल वाणी धरम की, सुन मन हरखित होय ।
दूर होंय भ्रम भ्रांतियाँ, पंथ उजागर होय ॥३॥
सुध बुध खोकर बावरा, पड़ा विषय के फेर ।
होश जगा सद्गुरु कृपा, उबरत लगी न देर ॥४॥
जीव डुबकियां खा रहा, भव सागर के बीच ।
धन्य भाग ! गुरुवर मिला, लिया बाँह भर खींच ॥५॥
बाहर बाहर भटकते, जीवन रहा गंवाय ।
भाग्य जगा, सद्गुरु मिला, अंतर दिया दिखाय ॥६॥

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३. दूरभाष : ८६
मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ३०२५१ ● वार्षिक शुल्क रु. १०/-आजीवन शुल्क रु. १००/-

विपश्यना" 1-2/86
पो. र. नं. Ns (M) 16/86

Licence No. NS 18
Licensed to post Without pre-payment

To

प्रेषक :
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)